© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
International Journal of Scientific Research in Science and Technology

प्रेमचन्द के साहित्य में स्त्रियों की सामाजिक समस्या

रीता पाल
शोधकर्त्री (हिन्दी)
हिन्दी विभाग
नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

समाज के अस्तित्व एवं विकास में स्त्री और पुरुष दोनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है किन्तु जैसे–जैसे समय गुजरता गया स्त्री को अलग–थलग करके पुरुष ने सारी सत्ता अपने हाथों में ले ली। और जिस तरह वह धन, सम्पत्ति तथा जमीन पर अपना अधिकार समझता था उसी तरह उसकी नजर में स्त्री भी एक सम्पत्ति बन गई। इस सम्बन्ध में एंगेल्स को उद्धृत करते हुए सिमोन द बुआ ने कहा है कि– ''व्यक्तिगत सम्पत्ति के लोभ से पुरुष में स्वामित्व की भावना विकसित हुई। वह जमीन का मालिक था और बाद में स्त्री का मालिक बन गया, यहीं से औरत की गुलामी की कहानी शुरू होती है।''[1] स्त्री की यही गुलामी समय के साथ बढ़ती गई और समाज मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक व्यवस्था में बदल गया। सामाजिक व्यवस्था के इस परिवर्तन को एंगेल्स 'स्त्री की विश्व–स्तर की ऐतिहासिक हार मानते हैं।[2] पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुरुष घर का स्वामी बन गया। स्त्री महज पुरुष की इच्छाओं की पूर्ति तथा प्रजनन का माध्यम भर रह गईं स्त्री की प्रजनन क्षमता को भी पुरुषों ने अपने अनुसार नियंत्रित किया। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव ने लिखा है कि– ''आदमी ने यह मान लिया है कि औरत शरीर है, सेक्स है, वहीं से उसकी स्वतंत्रता की चेतना और स्वच्छंत व्यवहार पैदा होते हैं। इसलिए वह हर तरह से उसके सेक्स को नियंत्रित करना चाहता है।''[3] इस नियंत्रण के बहाने पुरुषों ने स्त्रियों को परतंत्र और निष्क्रिय बनाने के लिए लगातार कोशिश की। वर्तमान समय में स्थिति यह है कि स्त्री मानव जाति और समाज का सबसे दमित और पीड़ित वर्ग है। गर्दा लरनर पितृसत्ता के ऐतिहासिक विकास क्रम का विश्लेषण करते हुए कहती हैं कि– ''सभ्यता के विकास के साथ (नव पाषाण काल) से ही स्त्रियों की गुलामी और शोषण की शुरूआत हो जाती है और आगे चलकर (1750ई0पू0 के लगभग) स्त्री इंसान से वस्तु बन गई।'[4] पुरुषों ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था के आदर्शों के अनुसार अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए सामाजिक नियमों एवं मान्यताओं में मनमाफिक परिवर्तन कर उन्हें दृढ़ता प्रदान की। इसके लिए धार्मिक, अवलंब लेकर अनेक ग्रन्थ रचे गए। पितृसत्तात्मक आदर्शों के अनुरूप रचे गए ग्रन्थों के माध्यम से धर्म, संस्कृति, नैतिकता, संयम और त्याग जैसे मूल्यों की दुहाई देकर स्त्रियों को बंधन में जंकड़ने की कवायद शुरू हुई।

यद्यपि यह माना जाता है कि प्राचीन काल विशेष वैदिक युग में स्त्रियों को गरिमापूर्ण जीवन स्थितियाँ प्राप्त थी। उन्हें शिक्षा, सम्पत्ति आदि के अधिकारों के साथ ही निर्णय लेने की स्वतंत्रता भी थी। उमा चक्रवर्ती 'जाति समस्या में पितृसत्ता' में इसका खण्डन करते हुए लिखती है कि 'भारतीय समाज में आदिकाल से ही स्त्रियों की दयनीय थी। बाद में नवजागरण काल में विदेशियों द्वारा भारतीय समाज की असभ्यता और बर्बरता के सवाल उठाने पर समाज सुधारकों ने इतिहास को गौरवशाली बनाने के लिए स्त्रियों का महिमामंडन किया।' 'ऐतरेय' और 'तैत्तिरीय' ब्राह्मण, 'मैत्रायणी संहिता' आदि कई ग्रन्थों में स्त्री की पुरुष पर निर्भरता और बंधन सम्बन्धी अनेक विधान मिलते हैं। मनु तो नारी स्वतंत्रता का पूर्णतः निषेध करते हुए 'स्मृति' में लिखते हैं–

''पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रश्य स्थाविरे भावे, न स्त्री स्वतंत्रता भमर्हती।''[5]

अर्थात् पुरुष को सदैव ही स्त्री की रक्षा करनी चाहिए तथा उन्हें भी कभी भी स्वतंत्र नहीं छोड़ना चाहिए। स्त्री की बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति और बुढ़ापे में पुत्र रक्षा करता है। स्त्री कभी स्वतंत्रता के योग्य नहीं होती। स्त्री की यह परतंत्रता मध्यकाल तक आते–आते और बढ़ जाती है। स्त्रियाँ पर्दाप्रथा, सती प्रथा जैसी अमानवीय प्रथाओं और

बालविवाह, अनमेल विवाह, अशिक्षा, गरीबी आदि के यातनादायक चक्रव्यूह में घिर जाती हैं। आधुनिक काल में औपनिवेशिक शासन के समय तक स्त्रियों की स्थिति शोचनीय बनी रही। इसी समय शुरू हुए समाज सुधार आन्दोलन के बाद स्त्रियों को कुछ अधिकार मिले, कुप्रथाओं एवं सामाजिक बंधनानें की जकड़ ढीली तो पड़ी नागरिक अधिकार, कानूनी सुरक्षा एवं संरक्षण आदि के बावजूद समाज में स्त्री को लैंगिक भेदभाव, असुरक्षा, हिंसा, बलात्कार, बाल–विवाह, अनमेल विवाह, आर्थिक परनिर्भरता जैसी अनेक समस्याओं का समाना करना पड़ता है। शम्सुल इस्लाम आधुनिक समाज में स्त्रियों की स्थिति के सम्बन्ध में लिखा है कि– ''भारतीय समाज में औरत ही एक ऐसी हस्ती है जिसका नसीब संस्कृतियों, क्षेत्रों वर्णों और धर्मों में व्यापक अन्तर और भेद होने के बावजूद हर जगह एक जैसा ही रहता है। लगातार तिरस्कार और अपमान जैसे उसकी नियति है।''[6] समाज में स्त्री शोषण की इस लम्बी परम्परा के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हमारी पितृसत्तात्मक एवं मनुवादी व्यवस्था है जिसे स्थाई और सर्वस्वीकृत बनाने में धर्मग्रन्थों, संहिताओं और रूढ़ियों की निर्णायक भूमिका रही है। शोषण और गुलामी की इस लम्बी प्रक्रिया के बीच स्त्री मुक्ति से जुड़े प्रश्न इक्कीसवीं शताब्दी के सबसे ज्वलंत मुद्दे हैं। ''भारत में स्त्री के लिए जगह 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' के मधुर छल से 'जिमि स्वतंत्र होहिं बिगरहिं नारी' की उन्मत्त घोषणा के बीच सिमटती रही हैं अब स्थितियाँ तेजी से बदल रही हैं फिर भी पुरुष का दृष्टिकोण लगभग अपरिवर्तित है। आधुनिकता के नए दबावों ने स्त्री की स्थिति को कुछ और जटिल ही किया है। लेकिन सबके बीच से ही अपने को नए ढंग से परिभाषित करने का उसका संघर्ष भी जारी है।''[7]

स्त्री स्वाधीनता और संघर्ष को धार प्रदान करने में साहित्य की असरदार भूमिका रही है। साहित्य में स्त्री–विमर्श इसी की फलश्रुति है। जिसमें परिवार, मातृत्व सहित सामाजिक गतिविधियों एवं संस्थाओं में स्त्री की भूमिका, सामाजिक–आर्थिक शोषण के साथ ही लिंग भेद पर आधारित स्त्री उत्पीड़न, स्त्री मुक्ति से जुड़ी समस्त समस्याओं को साहित्य चिंतन का विषय बनाया गया है। इसका उद्देश्य उन कारणों की तलाश करना है जो स्त्री जीवन की समस्याओं के लिए उत्तरदायी हैं साथ ही स्त्री मुक्ति के रास्ते तलाशना है। हिन्दी कथा–साहित्य में विमर्शात्मक ढाँचे से अलग स्त्री की समस्याओं को जिन लेखकों ने अभिव्यक्त किया है। उनमें साहित्य के माध्यम से प्रेमचन्द अग्रणी रहे। साहित्य अपने समाज की सृष्टि होता है, इसलिए साहित्यकार का कर्त्तव्य होता है कि वह अपने समय और समाज के प्रति सजग और ईमानदार हो। अपनी गहन अन्वीक्षण दृष्टि के चलते सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वास, छूआछूत, ऊँच–नीच, आर्थिक असमानता आदि को उजागर करके वैचारिक क्रान्ति के लिए ठोस जमीन तैयार करें। इस दृष्टि से कथा सम्राट मुंशी प्रेमचन्द अपने समय और समाज सजग और ईमानदार हैं, साहित्य के विश्वकर्मा है– समानता और समरसता के लिए प्रतिबद्ध और जवाबदेह। सामाजिक और मानवीय विकास के पक्षधर प्रेमचन्द अपने युग की एक विशाल संस्था के रूप में स्थापित है। उन्होंने अपनी धारदार कलम से समाज में व्याप्त विसंगतियों को समूल उखाड़ कर रख दिया है।

हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई संप्रदायवाद पर तीखा प्रहार करने वालों में प्रेमचंद अकेले व्यक्ति है। सांप्रदायिकता साहित्यिक संरचना न होकर अंध धार्मिकता का परिणाम है। हमारा देश और समाज विभिन्न जातियों और धर्मों से बना है। वर्ण, जाति, धर्म, संप्रदाय भरतीय संस्कृति की विशिष्टताएँ हैं, लेकिन आज सांप्रदायिकता और संस्कृति को धूल में मिला रही है। मानवतावादी दृष्टि के कारण देश की सांप्रदायिकता समस्या प्रेमचन्द की चिन्ता का मुख्य विषय थी, इसीलिए वह इस नाजुक स्थिति की अन्तिम तह तक जाकर परखते थे और समूल नष्ट करने का प्रयास करते थे। ''उनकी दृष्टि में धर्म, जाति, वर्ण, संप्रदाय, जमींदार, पूँजीपति, साहूकार, उद्योगपति, शासनाधिकारी, पुलिस, न्यायपालिका तथा परम्परागत रीति–रिवाज आदि आम आदमी का शोषण करते हैं, उनको भूखा मारते हैं। इसीलिए प्रेमचंद ने प्रत्येक कोण से इन शक्तियों पर प्रहार किये, इनके आडम्बरों को उद्घाटित किया, इनकी सांस्कृतिक धार्मिकता को अनावृत्त किया, इनकी बनावटी देश भक्ति की पोल खोली, इनकी सांस्कृतिक उपलब्धियों के खोखले पन को उजागर किया।''[8]

नारी पराधीनता के प्रश्नों को लेकर प्रेमचंद के तेवर बड़े तीखे हैं। समाज के बदलने की प्रक्रिया में वे स्त्रियों की भूमिका को सामने लाते रहे हैं। सदैव से स्त्रियाँ अपमानित, शोषित और लांछित होती आयी है। भारतीय समाज की संरचना में मौजूद अर्थ और वर्ण व्यवस्था जैसी तमाम विसंगतियों के चलते पुरुष सत्ता की गुलामी की शिकार स्त्रियों की अंतहीन यातनाएँ जहाँ–तहाँ बिखरी पड़ी है। भारतीय समाज में स्त्री का स्थान विशेष तो है लेकिन उसकी सामाजिक हैसियत 'वस्तु' से अधिक कुछ नहीं। यह तो है कि नारी की आजादी के लिए सामंती सोच को बदलना निहायत जरूरी है। प्रेमचन्द समाज में स्त्री को पुरुषों के बराबर दर्जा दिये जाने की जी–तोड़ वकालत करते दिखायी देते हैं। डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के प्रश्नों का उत्तर देते हुए 26 दिसम्बर 1934 को प्रेमचन्द ने पत्र में लिखा था, ''सर्वहारा वर्ग में तलाक साधारण सी बात है। केवल तथाकथित

उच्चवर्ग में ही उसने गम्भीर रूप धारण कर लिया है। अपने श्रेष्ठतम रूप में विवाह भी एक प्रकार का समझौता और समर्पण ही है। यदि कोई दम्पत्ति सुखी होना चाहते हैं तो उन्हें एक–दूसरे के लिए गुंजायश रखनी चाहिए। स्वच्छंद प्रेम और सभी प्रकार के सम्बन्ध की छूट होने पर भी अमरीका में तलाक कम हो, ऐसी बात नहीं है। चाहे स्त्री हो या पुरुष उनमें से एक को झुकने के लिए तैयार रहना चाहिए। मैं यह नहीं मानता की दोषी केवल पुरुष ही है। बहुत से मामले ऐसे हैं, जहाँ स्त्रियाँ संकट पैदा करती है और काल्पनिक दुःखों की सृष्टि कर लेती है। जब इस बात का निश्चय ही नहीं है कि तलाक हमारी वैवाहिक बुराइयों को दूर करेगा, मैं उसे समाज पर लादना नहीं चाहता। हाँ, कुछ मामलों में तलाक आवश्यक हो जाता हैं लेकिन मेरी समझ में झगड़े की जड़ एक–दूसरे की उपेक्षा को छोड़कर और कोई नहीं है। गरीब स्त्री को बिना कुछ गुजारा दिये तलाक दे दिया जाय, यह माँग केवल कुत्सित व्यक्तिवाद के परिणाम स्वरूप की जाती है। समानता के आधार पर निर्मित समाज में इस माँग का कोई स्थान नहीं है।''[9]

इसके बावजूद प्रेमचन्द नारी जाति की अस्मिता और सम्मान के रक्षा हेतु पाँच अधिकार अनिवार्य रूप से देने की बात करते हैं–

1. एक विवाह का नियम स्त्री–पुरुष दोनों के लिए लागू हो, कोई पुरुष पत्नी के जीवन काल में दूसरा विवाह न कर सके।
2. पुरुष की सम्पत्ति पर पत्नी का पूरा अधिकार हो, वह उसे रेहन व जो कुछ चाहे कर सके।
3. पिता की सम्पत्ति पर पुत्र और पुत्री दोनों का समान अधिकार हो।
4. तलाक का कानून जारी किया जाये ओर वह स्त्री पुरुष दोनों के लिए समान हो।
5. तलाक के समय स्त्री, पुरुष की आधी सम्पत्ति पाये और यदि मौरुषी जायदाद हो, तो उसके एक अंश।''[10]

निष्कर्ष–

प्रेमचन्द ने त्रासदी को भी स्त्री के सारे जीवन–अनुभव के रूप में चित्रित किया है, जो बंद कमरों के अन्दर एकान्त में घुट जाया करती हैं जिसमें पुरुष स्त्री पर सौन्दर्य, आचरण, अनपढ़ और फूहड़पन तथा बाँझ होने का दोष मढ़कर उससे छुटकारा पाने का प्रयास करता है। इस संदर्भ में प्रेमचन्द ने स्त्रियों को समान अधिकार देने की वकालत की है।

वर्तमान समय और समाज में स्त्री का जीवन अनेक समस्याओं से घिरा है जिसका प्राथमिक कारण सामाजिक और परम्परागत बंधन हैं। जो जन्म के साथ ही धर्म, संस्कृति, इज्जत–मर्यादा जाति, परम्परा आदि के नाम पर उन पर लगाए जाते हैं। इन बंधनों के कारण स्त्री शिक्षा, रोजगार, सम्पत्ति आदि के अधिकार और सामाजिक स्वतंत्रता से रहित होकर आजीवन एक अघोषित चहारदिवारी में कैद होकर रह जाती है। हमारे समाज में स्त्री को परिवार की इज्जत–मर्यादा के केन्द्र में रखा गया है जिसके कारण वह तरह–तरह के शोषण, अपमान और तिरस्कार झेलती रहती है।

सन्दर्भ सूची

1. खेतान, प्रभा (अनु0) (2002). स्त्री उपेक्षिता, नई दिल्ली : हिन्दी पॉकेट बुक्स सेन्टर, पृ0 45
2. जोशी, गोपा (2015). भारत में स्त्री असमानता, नई दिल्ली : हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ0 14
3. यादव, राजेन्द्र (2015). आदमी की निगाह में औरत, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृ0 15
4. जोशी, गोपा (2015). भारत में स्त्री असमानता, पृ0 11–12
5. मनुस्मृति
6. राजकिशोर (सं0) (2006). स्त्री के लिए जगह, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ0 65
7. वही, पृ0 कवर पृष्ठ
8. प्रेमचन्द, मूल्यांकन और मूल्यांकन : डॉ0 नत्थन सिंह, पृ0 15
9. डॉ0 इन्द्रनाथ मदान 'प्रेमचन्द : एक विवेचन' से उद्धृत, पृ0 155
10. नारी जाति के अधिकार– 1931, प्रेमचन्द (वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, सामाजिक क्रान्ति के दस्तावेज से उद्धृत), पृ0 521